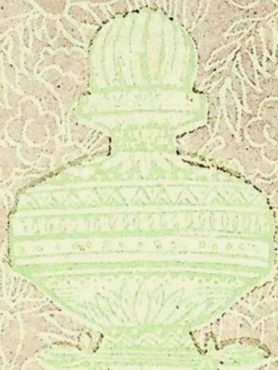




...माला

शकराचार्य

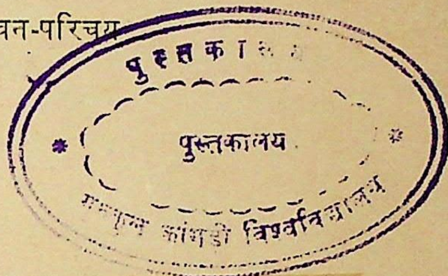
सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

१९६१

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

शंकराचार्य

आदिगुरु शंकराचार्य का जीवन-परिचय



लेखक

विष्णु प्रभाकर



सम्पादक

यशपाल जैन

१६६१

सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

तीसरी बार : १९६१
मूल्य
[redacted] सैंतीस नये पैसे

मुद्रक
राष्ट्रभाषा प्रिन्टर्स
दिल्ली

समाज-विकास-माला

हमारे देश के सामने ग्राज सबसे बड़ी समस्या करोड़ों ग्रादमियों की शिक्षा की है। इस दिशा में सरकार की ग्रोर से यदि कुछ कोशिश हो रही है तो वही काफी नहीं है। यह बड़ा काम सबकी सहायता के बिना पार नहीं पड़ सकेगा।

बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई की तरफ जबसे ध्यान गया है, ऐसी किताबों की मांग बढ़ गई है, जो बहुत ही ग्रासान हों, जिनके विषय रोचक हों, जिनकी भाषा मुहावरेदार ग्रौर बोलचाल की हो ग्रौर जो मोटे टाइप में बढ़िया छपी हों।

यह पुस्तक-माला इन्हीं बातों को सामने रखकर निकाली गई है। इसमें कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। इन सबकी भाषा बड़ी ग्रासान है। विषयों का चुनाव सावधानी से किया गया है। छपाई-सफाई के बारे में भी विशेष ध्यान रक्खा गया है। हर किताब में चित्र भी देने की कोशिश की है।

यदि पुस्तकों की भाषा, शैली, विषय ग्रौर छपाई में पाठकों को सुधार की गुंजाइश मालूम हो तो उसकी सूचना निस्संकोच देने की कृपा करें।

तीसरा संस्करण

पुस्तक का इतनी जल्दी नया संस्करण निकालते हुए हमें हर्ष होता है। इस माला में ग्रबतक १५१ पुस्तकें निकल चुकी हैं। वे सभी बहुत ही उपयोगी तथा संग्रहणीय हैं।

—मंत्री

पाठकों से

भारत की भूमि अद्भुत है। उसने ऐसे-ऐसे महापुरुषों को जन्म दिया है, जिन्होंने दुनिया में अपने देश का नाम ऊंचा किया है। शंकराचार्य इन्हीं महापुरुषों में से थे। अपनी विद्वत्ता के कारण वह आदिगुरु या जगद्गुरु माने जाते हैं।

उन्होंने बहुत थोड़ी उम्र पाई। कहते हैं, बत्तीस वर्ष की अवस्था में उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई थी। लेकिन अपने पीछे वह ऐसी चीजें छोड़ गये, जिनके लिए वह हमेशा याद रहेंगे।

धर्म और संस्कृति को उन्होंने देश के एक छोर से दूसरे छोर तक पहुंचाया। उनका जन्म केरल के कालटी नमक स्थान पर हुआ था। लेकिन धर्म की मशाल लेकर वह बदरीनाथ गये, केदारनाथ गये और उसका उजाला जगह-जगह फैलाया। वह ज्योति आज भी जल रही है। उनके स्थापित किये मठ आज भी उनका यश फैला रहे हैं।

आदिगुरु शंकराचार्य का जीवन बहुत ही शिक्षाप्रद है। इस पुस्तक में उसी पर प्रकाश डाला गया है। आप इसे अवश्य पढ़ें और देखें कि आदमी अगर चाहे तो कितने बड़े काम कर सकता है।

—संपादक

शंकराचार्य

: १ :

बहुत-बहुत पुरानी बात है। सैकड़ों-सैकड़ों साल पुरानी-बात।

एक ब्रह्मचारी था। होगा छः साल का, लेकिन मुख पर तेज इतना कि जैसे सूरज धरती पर उतर आया हो। उसका ज्ञान देख सब दांतों तले उंगली दबाते। दया-माया का तो बस सागर था। सदा की तरह एक दिन वह भीख मांगने निकला। चलता-चलता एक विधवा के घर के सामने पहुंचा। पुकारा, "मां भीख दो।"

विधवा ने आवाज सुनी, जैसे किसीने मौत की सजा सुनाई हो। घर में एक दाना न था। बेचारी रोती जाती, कोने ढूंढ़ती जाती, पर कुछ हो तो मिले। बहुत ढूंढ़ने पर एक सूखा आंवला मिला। उसीको लेकर बाहर आई। बड़े आदर से ब्रह्मचारी को दिया। फिर रो-रोकर अपनी करुण कहानी सुनाई। बालक तो दया का सागर था। उसका दिल रो उठा। कहते

हैं, वह वहीं बैठ गया और लछमी-मां की गुहार करने लगा। मां बालक की पुकार कैसे अनसुनी करती ! उसने विधवा का घर सोने के आंवलों से भर दिया।

एक दिन इस ब्रह्मचारी की भेंट एक साधु से हुई। साधु ने बालक को देखा, बालक के तेज को देखा। दंग रह गया। पूछा, "तुम कौन हो ?"

बालक मुस्कराया, बोला, "मैं नहीं जानता।"

साधु ने फिर पूछा, "सच ! तुम नहीं जानते कि तुम कौन हो ?"

बालक ने फिर वही जवाब दिया, "मैं नहीं जानता कि मैं कौन हूं। आप कोई ऐसा उपाय बताइये, जिससे मैं अपनेको जान सकूं।"

साधु बोले, "अपनेको जानना चाहते हो। यही तो असली बात है। पर संसार में रहकर इसको नहीं जाना जा सकता।"

बालक ने उत्तर दिया, "नहीं महाराज, यह बात हमारे अपने भीतर है। इसे खोजने बाहर न जाना पड़ेगा। आत्म-चिंतन से यह पाई जा सकती है।"

साधु उस बालक की यह गूढ़ वाणी सुनकर चकित हो उठे। उन्होंने उसे बहुत-बहुत आशीर्वाद दिया और चल पड़े। बालक पीछे-पीछे चला। साधु

ने देखा तो पूछा, "क्या चाहते हो ?"

"संन्यासी होना।"

साधु और भी चकित हुए, बोले, "अभी तुम्हारी आयु साधु होने की नहीं है। फिर तुम अपनी मां के इकलौते बेटे हो। उनकी अनुमति के बिना ऐसा करना उचित नहीं है।"

यह कहकर साधु चले गए। बालक वहीं बैठकर सोचने लगा, "मैं कौन हूं ?" धीरे-धीरे दिन डूब गया। रात आ गई! चारों ओर घना अंधेरा छा गया, पर बालक को कोई सुध-बुध नहीं। उधर मां राह देखते-देखते थक गई! आखिर कुछ लोगों को लेकर ढूंढ़ने निकली। तब कहीं वह घर लौटा।

वह बालक कौन था, इतना तेज, इतना ज्ञान कि यकीन न आये।

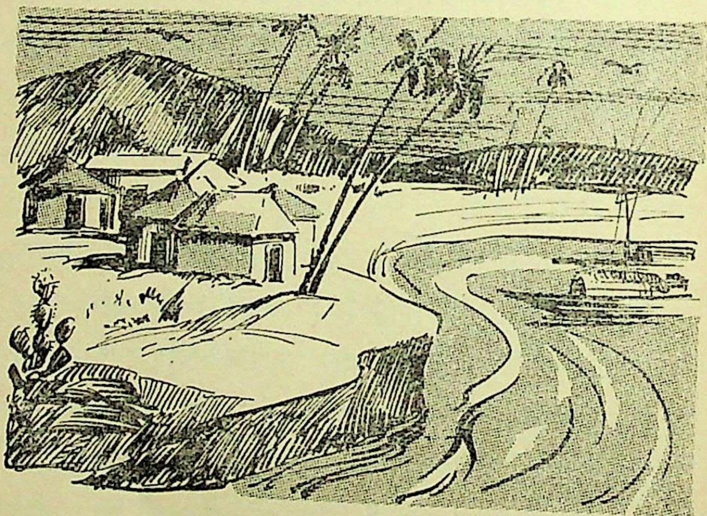
बात कुछ ऐसी ही है, लेकिन है सच। इस बालक का नाम दुनिया जानती है। जानती ही नहीं, पूजा करती है। बड़ा होकर यह बालक 'शंकराचार्य' के नाम से मशहूर हुआ। भला 'शंकराचार्य' का नाम कौन नहीं जानता! कुल बत्तीस साल वह इस दुनिया में रहे। बत्तीस साल तो हम-आप खेलते-खाते बिता देते हैं। मानते हैं कि ज्ञान की बात करना बड़े-बूढ़ों का

काम है। लेकिन शंकर ने बत्तीस साल की आयु में गजब कर दिया। सारा देश घूम डाला। पढ़ा इतना कि अचरज होता है। किताबें इतनी लिखीं कि यकीन नहीं आता। और ज्ञान-सा-ज्ञान, दुनिया दांतों तले उंगली दबाती है। बड़े-बड़े पंडित अर्थ करते घबराते हैं।

आओ, हम भी इस अनोखे महापुरुष की कहानी कहकर कुछ सीखें, कुछ पायें।

: २ :

शंकर कब पैदा हुए, इस बारे में कई राय हैं।



शंकराचार्य की जन्म-भूमि

लेकिन अब कुछ बातें तय हो गई हैं। माना जाता है कि वह ७८८ ई० में पैदा हुए और ८२० ई० में मरे। सुंदर केरल प्रदेश के कालटी गांव में उनका जन्म हुआ। आलवाई नदी के किनारे पर यह गांव बसा है। पर्वत भी दूर नहीं है। इन सब बातों से इस गांव की सुंदरता और भी बढ़ गई है।

शंकर के माता-पिता नम्बूदरी (नम्पूतरी) ब्राह्मण थे। ब्राह्मणों में नम्बूदरी ब्राह्मण बड़े ऊंचे हैं। पूजा-पाठ आचार-विचार से उन्हें बड़ा अनुराग है। शंकर के पिता शिवगुरु ऐसे ही वैरागी थे। बड़ी कठिनता से शंकर के बाबा ने उनका विवाह किया। इनकी मां के बहुत-से नाम सुने जाते हैं। अधिकतर लोग सुभद्रा कहते हैं। हम भी सुभद्रा कहेंगे। शिवगुरु और सुभद्रा दोनों बड़े ऊंचे विचारों के थे। बड़ी साधना के बाद बड़ी उमर में शंकर का जन्म हुआ। अभी तीन साल के ही थे कि शिवगुरु चल बसे। बेचारी विधवा मां इनको लेकर अकेली रह गई। बड़े प्रेम से इन्हें पाला-पोसा। वह इन्हें बहुत प्यार करती थी। दुनिया जानती है कि शंकर मां को कितना प्यार करते थे।

कहते हैं, आठ साल की उम्र में ही शंकर ने सब-कुछ पढ़ डाला था। फिर अपनेको जानने की धुन

लगी। साधु बनने को तड़पने लगे! पर जबतक मां न कहे, साधु कैसे बनें! और मां कहे कैसे? उसका शंकर के सिवा और कौन था? उसीको साधु बन जाने दे? और शंकर भी अडिग। मां की अभिलाषा थी कि बेटे का विवाह करके बहू का मुंह देखे। बेटे की अभिलाषा थी कि साधु बनकर अपनेको जाने।

इसी तरह कई दिन बीत गये। शंकर दुःखी थे कि वह अपनेको नहीं जान पायेंगे। मां दुःखी थी कि पति गये, अब पुत्र भी चला। तभी एक दिन हुआ क्या कि मां-बेटे दोनों नदी में नहाने गये। मां नहाकर कपड़े बदलने लगी। शंकर पानी में उतरे। हाय राम! यह क्या हुआ! वह तो ज़ोर-से चीख पड़े। मां ने वह चीख सुनी तो जैसे कलेजा फट गया। मुड़कर देखा—एक भयानक घड़ियाल ने शंकर का पैर पकड़ रक्खा है। कहां वह कोमल बालक, कहां खूंखार जानवर! शंकर ने पैर छुड़ाने की बहुत कोशिश की, मां ने अनेक उपाय किये, पर कुछ न बना। सोचो तो कितना करुणाजनक नज़ारा रहा होगा! असहाय मां घाट पर खड़ी बिलख रही है, बेटा मौत से लड़ रहा है, तड़फड़ा रहा है।

आखिर शंकर को एक बात सूझी। मां से बोले,

"मां, मैं अब तो मर ही रहा हूं। आप मुझे संन्यासी बन जाने दें। मोक्ष तो मिलेगा।"

बेबस मां क्या करती! बेटे की बात मान ली। तभी क्या हुआ? आस-पास से मछुवे दौड़ पड़े। वह शोर मचाया कि मगर को भागते बना। संयोग की बात है। शंकर को बचना था। मां खुशी से भर उठी, शंकर को लेकर घर लौटी। यह भी भूल गई कि शंकर अब संन्यासी बन चुके हैं। पर शंकर जानते थे। उन्होंने मां से कहा, "तुमने संन्यासी बन जाने दिया, तभी मैं बच सका। अब मुझे जाने दो। गुरु की तलाश करके नियमपूर्वक संन्यासी बनूंगा।"

मां जानकर भी अनजान बन गई। किसी भी तरह वह शंकर को जाने देना नहीं चाहती थी। मां जो थी, पर शंकर भी शंकर थे। आखिर मां झुकी, बोली, "जाने दूंगी, पर दो बातें मेरी मानोगे?"

शंकर ने कहा, "मानूंगा। कहो।"

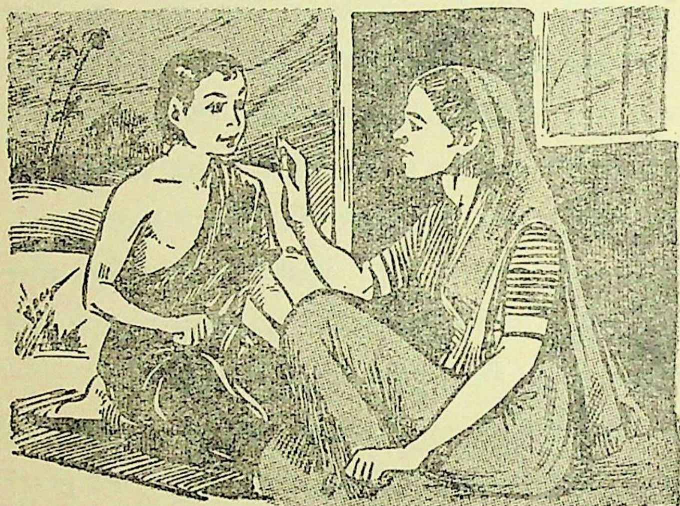
मां बोली, "मैं जब मरूं तो तुम मेरे पास आ जाना।"

शंकर ने वचन दिया, "आऊंगा, मां।"

"और अपने हाथ से ही मुझे जलाना।"

"यह भी करूंगा, मां।"

संन्यासी ऐसा नहीं कर सकते, पर शंकर क्या औरों जैसे थे ? मां को दुःख कैसे पहुंचाते ! बेटा



मां ने कहा, "जब मैं मरूं तो तुम मेरे पास आ जाना।"

छिन गया, इतना क्या कम था ! फिर रूढ़ियों को तोड़ना उनका काम था ।

सो मां से विदा लेकर चल पड़े गुरु की खोज में । उत्तर की ओर चले । चलते गये, चलते गये, वन-जंगल आये, पर्वत आये, नदियां आईं । सबको पार करते हुए वह नर्मदा के किनारे पर ओंकारनाथ के पास

पहुंचे। यहां एक गुफा में गोविन्द मुनि तप करते थे। शंकर ने इनका बड़ा नाम सुना था। इन्होंने भी जब शंकर को देखा तो देखते रह गये। फिर कुछ प्रश्न पूछे। उनका उत्तर सुना तो जैसे आँखें खुल गईं। यह उमर और यह ज्ञान ! तुरन्त शिष्य बना लिया। तीन साल तक शंकर गुरु के पास रहे। वेदांत की गहरी बातें बड़ी सुगमता से उन्होंने सीख लीं। यहां कुछ ऐसी बातें भी हुईं कि जिन पर यकीन नहीं होता। जैसे कि एक बार बड़ी भारी बाढ़ आई। गुरुदेव गुफा में समाधि लगाये बैठे थे। हो तो क्या हो ! पानी गुफा में गया और गुरुदेव मरे। सब घबरा उठे। पर शंकर ज़रा भी विचलित न हुए। मंत्र पढ़कर एक घड़ा दरवाजे पर रख दिया। बस पानी गुफा में नहीं जाता था, घड़े में जाता था। गुरुदेव बच गये।

बात ऐसे हुई होगी कि शंकर ने साहस करके किसी दूसरी तरफ नाली निकाल दी होगी। पानी उधर बह गया होगा। आज भी जब कोई साहस का काम करता है तो कह देते हैं—अरे, उसने तो जैसे मंत्र पढ़ दिया। जो हो, गुरुदेव बहुत खुश हुए, बोले, "शंकर,तुम्हारी शिक्षा पूरी हुई। अब तुम काशी जाओ। जो कुछ मैंने पढ़ाया है, उसे वहां सिखाओ।"

गुरुदेव को शंकर पर अगाध विश्वास था। वह मानते थे कि एक दिन यह वेदांत का प्रकाश भारत-भर में फैला देगा। एक बार उनके गुरु गौड़पाद वहां आये थे। उन्होंने शंकर के तेज को देखकर कहा था, "यह एक महापुरुष होगा। वैदिक धर्म का प्रकाश फैलायगा।" यही हुआ भी। काशी में जब शंकर पहुंचे तो कुल बारह साल के थे। उनका ज्ञान देखकर पंडित हैरान रह गये। देखते-देखते उनके शिष्य बढ़ने लगे। उनका नाम फैलने लगा। उस समय तक बौद्ध धर्म का रूप पलट गया था। उसमें गिरावट आ गई थी। वाममार्गी कापालिक बढ़ रहे थे। अनाचार बढ़ रहा था। तर्क ने दर्शन को जड़वादी बना दिया था। शंकर ने सबसे लोहा लिया। वैदिक धर्म के सच्चे रूप का प्रचार किया। वह सच्चा रूप था—अद्वैत-तत्त्व यानी ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है, माया है। जीव ब्रह्म से अलग नहीं है, ब्रह्म ही है।

एक दिन शंकर शिष्यों के साथ गंगा-तट पर जा रहे थे। राह में उन्हें एक चाण्डाल मिला। चार भयानक कुत्तों के साथ उसने राह रोक रक्खी थी। शंकर ने यह देखकर पुकारा, "अरे, दूर हट, दूर हट।"

लो, चाण्डाल हटना तो दूर, खिलखिला पड़ा,

बोला, "आप तो उपनिषद् पढ़ाते हैं। मानते हैं कि ब्रह्म और जीव एक है। तब आप किसे दूर हटा रहे हैं ? सूरज का प्रकाश सब पर एक-सा पड़ता है। 'मैं ब्राह्मण हूं और तू चाण्डाल ! तू दूर हट।' यह आपका झूठा आदेश है। सब शरीरों में एक समान रहनेवाले भगवान को आप भूल रहे हैं। आप तो मोक्ष देनेवाली विद्या पा गये हं, फिर आपके मन में जन-संग्रह की कामना क्यों जाग रही है ?"

शंकर ने चाण्डाल की बातें सुनीं, जैसे आंखें खुल गईं। विनय से सिर झुक गया। अपनी गलती मानते हुए वह बोले, "आपने जो कुछ कहा, एकदम ठीक कहा। आपके वचनों से मेरा संशय मिट गया।" यही नहीं, उन्होंने चाण्डाल को अपना गुरु माना और भक्ति-भाव से उसे प्रणाम किया, क्योंकि वह मानता था कि जो चेतनता विष्णु, शिव आदि देवताओं में है, वही कीड़े-मकोड़े-जैसे छोटे जीवों में भी है। ऐसा दृढ़ता से माननेवाला गुरु ही हो सकता है। कहते हैं, चाण्डाल के रूप में भगवान् शिव ही शंकर की परीक्षा लेने आये थे। पर ये सब बातें बाद में जुड़ गई हैं। हर महापुरुष के साथ जुड़ जाती हैं।

: ३ :

इसके बाद शंकर ने सोचा—व्यास भगवान ने जो कुछ लिखा है, मैं क्यों न उसको सरल रूप में समझाऊं। यह काम नगरों के शोर में न होगा। मुझे कहीं तपोवन में जाना चाहिए। यह सोचकर वह हिमालय की ओर चल पड़े। गंगा के किनारे-किनारे वह हरिद्वार गये, ऋषिकेश गये, अनेक तीर्थों के दर्शन किये। इधर नर-बलि देने की रीति थी। लोगों को समझा-बुझाकर उसे दूर किया। फिर आगे बढ़ते-बढ़ते बदरीनाथ पहुंचे। राह कठिन थी, पर स्थान मनोरम था। कलकल करती अलखनंदा अलख जगा रही थी। दोनों ओर नर-नारायण पर्वत हाथ फैलाये खड़े थे, मानो तप कर रहे हों। पास ही ऊंची-ऊंची चोटियां बरफ से ढकी हुई थीं। सूरज की किरणें उनपर पड़तीं तो भगवान जैसे हस पड़ते।

वहां नारायण का मंदिर था, पर नारायण की मूर्ति न थी। विदेशियों के हमले के समय लोगों ने उसे नारद-कुण्ड में डाल दिया था। शंकर ने उसे निकाला, विधिपूर्वक उसे स्थापित किया। वहां के पुजारी पढ़े-लिखे न थे। तब शंकर ने यह नियम बनाया कि नम्बूदरी ब्राह्मण ही यहां पूजा करेंगे।

आज भी उस मंदिर के पुजारी केरल से आते हैं। इसका एक और लाभ हुआ। उत्तर और दक्षिण का मेल बढ़ा।

यहां से कुछ नीचे शंकर ने एक मठ बनाया। उसका नाम था ज्योतिर्मठ, जो अब 'जोशी मठ' कहलाता है। उसके बाद वह बदरीनाथ से भी आगे 'व्यास गुफा' में गये। सरस्वती नदी के तट पर यह गुफा आज भी मौजूद है। यहांपर बैठकर शंकर ने ब्रह्म-सूत्र पर, गीता पर, उपनिषदों पर सरल टीकाएं लिखीं। चार साल वह यहां रहे और इन चार वर्षों में सब टीकाएं लिख डालीं, कठिनता को सरल कर दिया।

घूमते-घूमते वह केदारनाथ गये, गंगोत्री गये, फिर उत्तर काशी आये। यहां एक अनोखी घटना घटी। पंडितों ने बता रखा था कि शंकर की आयु सोलह वर्ष की है। वह पूरी हो चुकी थी। वह उस समय कुछ उदास से भी थे। एक दिन शिष्यों को ब्रह्मसूत्र पर अपनी टीका पढ़ा रहे थे तभी एक ब्राह्मण वहां आया। काला रंग, पर बड़ा तेजवान! उसने शंकर से पूछा, "तुम कौन हो और क्या पढ़ा रहे हो?"

एक शिष्य ने उत्तर दिया, "ये हमारे गुरु हैं।

उपनिषदों के पंडित हैं। व्यासमुनि के ब्रह्मसूत्रों पर इन्होंने टीका लिखी है।"

यह सुनकर वह ब्राह्मण चकित हो उठा। बोला, "भला इस कलियुग में ऐसा कौन है, जो व्यास के सूत्रों का सच्चा मर्म समझ सके। मैं ऐसे पंडित की तलाश में हूं। एक सूत्र के अर्थ के बारे में मेरे मन में शंका है। यदि तुम्हारे गुरु उसका मर्म जानते हैं तो मेरी शंका दूर करें।"

शिष्यों ने गुरु की ओर देखा और गुरु ने उस तेजवान ब्राह्मण को देखा। फिर शीश झुकाकर बोले, "सूत्र का मर्म जाननेवालों को मैं नमस्कार करता हूं। मैं जानने का अभिमान नहीं करता। फिर भी आप जो कुछ पूछेंगे उसका समाधान करने की कोशिश करूंगा।"

कहते हैं, वह ब्राह्मण सात दिन तक लगातार सवाल पूछता रहा, शंकाएं उठाता रहा और शंकर शांत भाव से जवाब देते रहे। वह जितना अधिक संदेह प्रकट करता, शंकर उतनी ही मजबूती से उसे दूर करते जाते। आखिर वह ब्राह्मण प्रसन्न हुआ। कथा आती है कि व्यासमुनि ही ब्राह्मण का रूप धरकर शंकर की परीक्षा लेने आये थे। जब शंकर परीक्षा

में सफल उतरे तो व्यास ने अपना रूप प्रकट कर दिया। बोले, "सोलह वर्ष में तुम्हारी मृत्यु होनेवाली थी, मैं तुम्हें सोलह साल और देता हूं। जाओ, भारत मे वेदांत का प्रकाश फैला दो।"

इस कथा का भी वही आशय है। शंकर परम पंडित थे, महापुरुष थे। इन कथाओं से यही बताने की कोशिश की गई है। इसी समय उन्होंने सुना––कुमारिल नाम के एक बहुत बड़े पंडित प्रयाग में रहते हैं। उनको अगर अपने मत में मिला सके तो बहुत सुगमता से वेदांत का प्रकाश घर-घर में पहुंच सकेगा।

बस शंकर हिमालय को छोड़कर फिर मैदान में उतर आये। चल पड़े यमुना के किनारे-किनारे प्रयाग की ओर।

: ४ :

कुमारिल भट्ट बहुत बड़े पंडित थे। उनके जीवन के बारे में पूरी बातों का पता नहीं लगता। इतना ही पता लगता है कि वह घर-गिरस्तीवाले थे। इनके पास धान के बहुत खेत थे। इन्होंने बौद्धधर्म का खंडन किया है। पर उससे पहले उस धर्म का खूब मनन भी किया। उन्होंने, कहते हैं, मशहूर बौद्ध आचार्य धर्मपाल को गुरु बनाया था।

इनके बारे में बहुत-सी ऐसी बातें सुनी जाती हैं, जिन-पर एकाएक यकीन नहीं किया जा सकता। हमें उन सब घटनाओं से कोई मतलब नहीं। हां, इन्होंने वैदिक मत का खूब प्रचार किया था। उनके अनेक चेले थे। उनमें मंडन मिश्र, प्रभाकर और भवभूति बहुत प्रसिद्ध हैं।

एक बार वह राजा सुधन्वा के महल के नीचे से जा रहे थे। सहसा कानों में एक करुण आवाज आई। आवाज नारी की थी--"क्या करूं, कहां जाऊं, वेदों की रक्षा कौन करेगा ?"

कुमारिल ने सुना, एकदम जवाब दिया, "हे रानी, चिंता मत कर, अभी मैं भट्ट धरती पर हूं।"

कुमारिल ने सचमुच ऐसा ही किया। कर्णाटक देश में एक बार फिर वैदिक मत गूंज उठा। शंकर ने इनके बारे में सुना था, पर मिले नहीं थे। जब मिले तो वह मिलना बड़ा करुण था। शंकर जैसे ही प्रयाग पहुंचे, सुना--कुमारिल त्रिवेणी के तट पर भूसे की आग में अपना शरीर जला रहे हैं। बड़ा अचरज हुआ, तुरंत चिता के पास पहुंचे। कैसा अनोखा दृश्य था। शरीर का निचला भाग जल चुका है, लेकिन मुख पर अनोखी शांति है। चारों ओर शिष्य खड़े हैं,

आंखों से आंसू बह रहे हैं।

शंकर को देखकर कुमारिल खिल उठे। शिष्यों ने उनकी पूजा की। शंकर ने अपनी टीका उनको दिखाई, जिसे देखकर वह खुश हुए। शंकर ने पूछा, "आप जीते-जी क्यों जल रहे हैं?"

कुमारिल बोले, "मैंने दो पाप किये हैं। मैंने ईश्वर का खंडन किया है और बौद्ध गुरु का अपमान किया है। इन पापों को दूर करने के लिए मुझे जलकर मरना ही होगा। आपने टीका लिखी है, यह मैं सुन चुका । पर..."

शंकर ने कहा, "आपका जीवन बड़ा पावन है। आप पाप नहीं कर सकते। आप कहें तो मैं जल छिड़ककर आपको जीवित कर सकता हूं।"

कुमारिल ने ये वचन सुने तो गद्गद् हो उठे, बोले, "हे महाभाग, मैं जानता हूं कि मैंने अपराध नहीं किया है। जो कुछ किया, वैदिक धर्म के प्रचार के लिए किया। फिर भी जिस गुरु से मैंने सीखा, उसीका खंडन मुझे करना पड़ा। सो जनता को सीख देने के लिए मुझे पाप का मार्जन करना ही चाहिए। वेदांत का आप प्रचार कर रहे हैं। मैं आपका साथ नहीं दे सकता। आप मेरे शिष्य मंडन मिश्र के पास जायं।

वह पंडित-शिरोमणि है। उसे अपने साथ कर लीजिये। आपकी जय होगी !"

यह कहकर कुमारिल भट्ट शांत हो गये।

मालूम नहीं, यह घटना सच है या झूठ, पर है अनोखी। शंकर का सारा जीवन ही ऐसा है। जो हो, कथा आती है कि शंकर मंडन मिश्र से मिलने गये। मंडन मिश्र अद्वैत वेदांत को नहीं मानते थे। वह विरोधियों के नेता थे। उनको अपनी ओर करना जरूरी था। वह मान गये तो सारे पंडित मान गये। उनके साथ शंकर की जो बात-चीत हुई, जो वाद-विवाद हुआ, वह सारी दुनिया में मशहूर है। उनको जीतते ही शंकर की धाक जम गई।

मंडन मिश्र कहां पैदा हुए, उनके माता-पिता कौन थे, इसका ठीक-ठीक पता नहीं लगता। इतना ही पता लगा है कि वह महिष्मती नगरी में रहते थे। यह नगरी आजकल मध्यप्रदेश में नर्मदा नदी के किनारे पर, मांधाता के नाम से मशहूर है। इस जगह माहिष्मती नाम की नदी नर्मदा में मिलती ह। मंडन मिश्र का विशाल भवन संगम पर बना था।

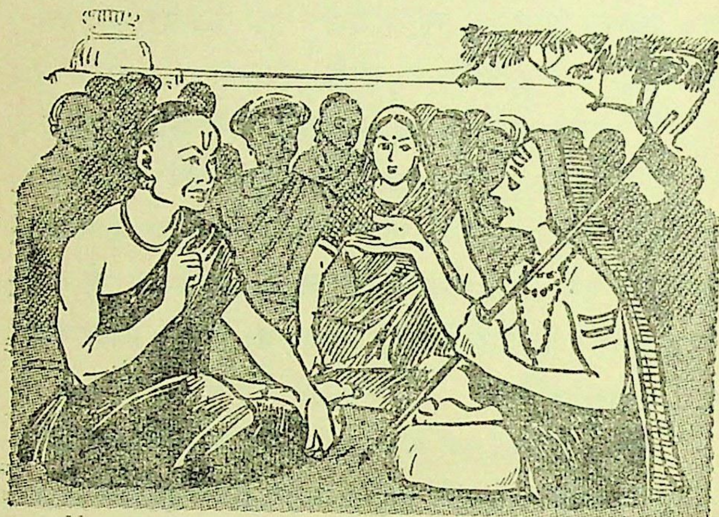
मंडन मिश्र की पत्नी का नाम भारती था। वह भी पति की तरह बड़ी विदुषी थी। सारे भारत में

उनका नाम फैला था। कथा आती है कि उस नगरी के सभी निवासी पंडित थे। मंडन मिश्र के दरवाजे पर टंगे पींजरों में पक्षी भी वेदों की चर्चा करते रहते थे। जब शंकर उस नगरी में पहुंचे तो नदी-तट पर नारियां नहा रही थीं। शंकर ने उनसे मंडन मिश्र का पता पूछा। उनमें मंडन मिश्र की दासी भी थी। उसने कहा, "जिस घर के दरवाजे पर पिंजरे में बैठी मैना यह बोल रही हो, 'कर्म आप फल देता है या भगवान कर्म-फल देते हैं। जगत सदा बना रहनेवाला है या नाश होनेवाला', उसी घर को आप मंडन मिश्र का घर जानना।"

शंकर मंडन मिश्र के पास पहुंचे। परिचय के बाद शंकर ने अपना आशय कहा। मंडन तो वाद-विवाद में कुशल थे ही। एकदम तैयार हो गये। अब सवाल उठा, जीत-हार का फैसला कौन करेगा? आखिर में मंडन मिश्र की पत्नी भारती को यह काम सौंपा गया।

दूसरे दिन अच्छी सायत में बात-चीत शुरू हुई। उस समय के दो तेजस्वी पंडितों की चर्चा सुनने के लिए नगरी के सभी विद्वान् वहां आ गये। दोनों शांत भाव से आसनों पर बैठे। दोनों के मुख पर तेज, दोनों मंद-मंद मुस्कराते, न कांपते, न आकाश में देखते, न

उनको पसीना आता, बस सावधान होकर एक-दूसरे के सवालों का जवाब देते। बीच में बैठी थी भारती, हार-जीत का फैसला करने के लिए। शंकर का पक्ष था



मंडन मिश्र और शंकर का शास्त्रार्थ

अद्वैत का कि जीव और ब्रह्म एक है। मंडन कहते थे जीव और ब्रह्म बराबर नहीं हो सकते थे। वे दो हैं।

इस तरह बात-चीत चलते कई दिन बीत गये। हर रोज दोनों नये-नये तर्क पेश करते, परंतु एक दिन ऐसा हुआ कि मंडन मिश्र शंकर की बात का जवाब न दे सके। भारती ने तुरंत कहा, "मेरे पति हार गये।" सोचो तो भारती कितनी बड़ी थी। पति को हारते

देखकर भी सच से नहीं डिगी। शंकर ने कहा था, "मैं हार गया तो संन्यास छोड़ दूंगा।" मंडन ने कहा था, "मैं हार गया तो संन्यासी हो जाऊंगा।"

मंडन को संन्यासी होना पड़ा, परंतु उससे पहले भारती ने कहा, "मेरे पति हारे, मैं नहीं हारी। आपकी जीत आधी जीत है। मुझे हरा देंगे तभी वह पूरी होगी। तभी मेरे पति आपके शिष्य बनेंगे।"

शंकर झिझके। पुरुष नारी से विवाद नहीं करते थे, पर भारती क्या साधारण नारी थी! वह नहीं मानी। शंकर को उससे वाद-विवाद करना पड़ा। परंतु आखिर में वह हार गई। मण्डन मिश्र शंकर के शिष्य बन गये और वह सुरेश्वर के नाम से मशहूर हुए। अब तो सारे उत्तर भारत में शंकर की धाक जम गई।

: ५ :

उत्तर को जीतकर शंकर दक्खिन की ओर बढ़े। मराठा प्रदेश में प्रचार किया। वहां से आज के तामिल प्रदेश में पहुंचे। वहां कर्नूल जिले में श्रीपर्वत एक बड़ा तीर्थ है। शिव का एक बहुत बड़ा मन्दिर है। उसकी दीवारों पर रामायण और महाभारत के चित्र बने हैं। उस काल में यहां कापालिकों का अड्डा था। ये महाभैरव के उपासक थे। इनकी पूजा बड़ी भयानक होती थी।

आग में आदमी के मांस की आहुति देते थे। ब्राह्मण की खोपड़ी में शराब पीकर व्रत की पारणा करते थे। महाभैरव के सामने पुरुष की बलि देते थे।

शंकर ने इनसे लोहा लिया। वे पराजित हो गये। पर वे छली थे। एक दिन उनका गुरु, जो इनका प्यारा चेला बना हुआ था, शंकर से अकेले में बोला, "मैं सिद्धि करना चाहता हूं। उसमें एक रुकावट पैदा हो गई है। बलि देने के लिए आप जैसे पंडित का सिर चाहिए। आप तो दयालु हैं। आपसे बढ़कर जगत में कौन है! आप अपना सिर मुझे दे दीजिये।"

शंकर ने सुना, सोचा, परोपकारी तो थे ही, कापालिक की बात मान गये। बोले, "पर मेरे चेलों से कुछ मत कहना। अच्छा, कल आना।"

अगले दिन कापालिक भयानक रूप धारण कर आया। शंकर तब अकेले थे। उसे देखकर वह मरने को तैयार हो गये। उन्होंने समाधि लगा ली। पर शंकर के एक-दो चेले तो थे नहीं! बात कैसे छिपती! उनके प्रसिद्ध शिष्य पद्मपाद को इस जाल का पता चल चुका था। वह चुपचाप वहीं छिपे थे। जैसे ही कापालिक ने शंकर का सिर काटने को तलवार उठाई, वैसे ही पद्मपाद ने त्रिशूल से उसे मार डाला।

उसके मरते ही वहां से कापालिक मत भी खत्म हो गया। शंकर आगे बढ़ गये। गोकर्ण तीर्थ गये, हरिशंकर तीर्थ में गये, अनेक तीर्थों में गये, अनेक शिष्य बनाये। चलते-चलते वह शृंगेरी आये। शृंगेरी मैसूर राज्य के कडूर जिले में है। आजकल तो वह एक बहुत बड़ा मठ है। वेदांत के प्रचार का केन्द्र है। शंकर ने सबसे पहले यहीं अपना मठ बनाया था। असल में जब वह काशी जा रहे थे तब उन्होंने वहां एक अनोखी घटना देखी थी। ताल के किनारे बहुत-से मेंढक के बच्चे खेल रहे थे। तेज धूप थी। तभी एक बहुत बड़ा सांप वहां आया। अपना फण फैलाकर उसने बच्चों पर छाया कर दी। शंकर चकित हो उठे। पता लगा कि कभी शृंगि मुनि ने यहाँ तप किया था। उसी तप का यह असर है।

यही सब देखकर शंकर ने सबसे पहला मठ यहीं स्थापित किया। यहीं रहकर वह अपनी लिखी टीकाओं का प्रचार करने लगे। यहां का वातावरण बड़ा शांत था। नगर के कोलाहल से दूर, पास में कल-कल करती तुंगा नदी, चारों तरफ घने जंगल—ऐसे स्थान पर पढ़ने-पढ़ाने में मन न लगेगा तो कहां लगेगा ?

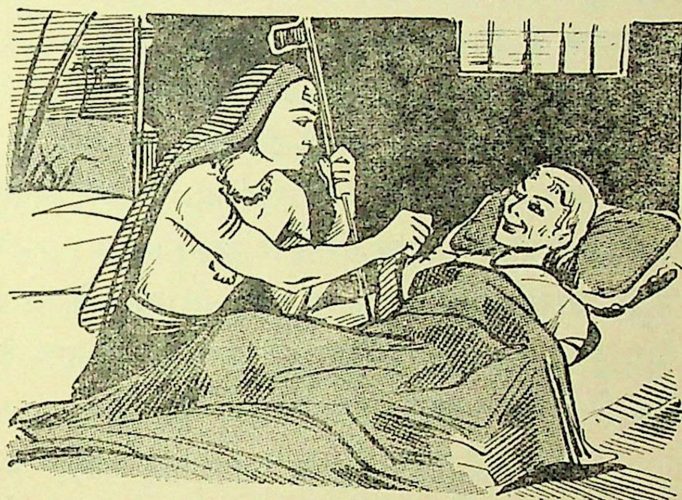
अबतक शंकर के चार बड़े शिष्य बन गये थे पद्मपाद, सुरेश्वर, हस्तामलक और तोटकाचार्य। सभी ने यहां रहकर बड़े-बड़े ग्रंथों की रचना की। शंकर ने इस मठ का अधिकारी सुरेश्वर को बनाया।

यहां रहते-रहते शंकर को मां की याद आ गई। बस चल पड़े अपने केरल की ओर। जैसे-जैसे वह कालटी की ओर बढ़ते थे, वैसे-वैसे उन्हें बचपन की बातें याद आती थीं। आंखों में ममता की मूरत मां नाच उठती थी। कैसी होगी वह? बहुत बूढ़ी हो गई होगी। जगत की भलाई के लिए उसने मुझे संन्यासी बन जाने दिया। मैं उसका इकलौता बेटा था। इस बुढ़ापे में वह अकेली कैसे रहती होगी?

इस प्रकार सोचते-सोचते उनका मन भर आया। वह कालटी पहुंचे। अपने घर पहुंचे। एक दिन गुरु की खोज में घर से चले थे। आज संसार के गुरु बनकर घर लौटे। मां गद्‌गद् हो उठी। बेचारी बीमार थी। आखिरी घड़ियां गिन रही थी। बोली, "मैं कितनी भाग्यवान हूं। आखिरी समय में तू आ गया। तू अच्छी तरह से है। मुझे और क्या चाहिए?"

शंकर वहीं बैठ गये, कहा, "मां, मैं कहकर गया था। क्यों न आता? बता, अब क्या करूं?"

मां बोली, "दुनिया भर को उपदेश दिया है, मुझे भी दे, जिससे मैं तर जाऊं।"



"मैं कितनी भाग्यवान हूं, तू आ गया।"

शंकर ने तब मां को भगवान् की बातें बताईं और वह कमलनयन कृष्ण का ध्यान करती हुई दूसरे लोक में चली गई।

मां चली गई, शरीर पड़ा रह गया। शंकर अब क्या करें। जाते समय कह गये थे, "मां, अपने हाथों से जलाऊंगा।" यही सोचकर उन्होंने भाई-बंदों को बुलाया, पर वे नहीं आये। संन्यासी दाह-संस्कार नहीं

कर सकता। वे इस बात को मानते थे। सो उन्होंने सहायता नहीं की। शंकर ने अपनी मां के शरीर को उठाया, दरवाजे पर लाये, लेकिन नातेदारों ने, दायादों ने जलाने के लिए आग तक न दी।

शंकर घबरा जाते, हार जाते तो बात क्या थी? उन्होंने सूखी लकड़ियां इकट्ठी कीं और खुद आग पैदा की। फिर मां का दाह-संस्कार किया। उन्हें अपने जाति-भाइयों के बर्ताव पर बड़ा गुस्सा आया। कहते हैं कि उन्होंने शाप दिया, "मैं आप लोगों को शाप देता हूं कि अबसे आपके कुल में सदा घर के दरवाजे पर ही शव-दाह हुआ करेगा।"

मालूम नहीं, शंकर ने शाप दिया या नहीं, पर आज होता यही है। मालाबार के ब्राह्मण घर के दरवाजे पर ही शव-दाह करते हैं। शंकर का समूचा जीवन अनोखी-अनहोनी घटनाओं से भरा हुआ है, पर मां के लिए उनका प्यार सब से अनोखा है, सबसे मधुर है। मां के सिवा उनके कौन था। मां की कृपा से उन्होंने सब-कुछ पाया। ऐसी मां की ममता का वह निरादर कैसे करते? उनके नातेदार, जाति-भाई सब नाराज़ हो गये, विरोधी हो गये, पर शंकर ने वही किया, जो करने को कह गये थे। इसीलिए आज हम

शंकर की मातृ-भक्ति को याद करते हैं।

कालटी में ही शंकर की भेंट केरल-नरेश राजशेखर से हुई। राजा ने शंकर का बड़ा आदर किया। उसने संस्कृत में तीन नाटक लिखे थे। शंकर ने उनके बारे में पूछा। राजा ने बताया कि वे तो मेरी लापरवाही से जल गये। शंकर बोले, "तो क्या हुआ। मुझे याद हैं, लिखाये देता हूं।"

बात यह थी कि जाते समय शंकर ने इन नाटकों को सुना था। याददास्त उनकी इतनी तेज थी कि जो एक बार सुन लेते थे, उसे कभी नहीं भूलते थे। तीनों नाटकों को उन्होंने फिर से लिखवा दिया। ऐसी कई घटनाएं उनके बारे में सुनी जाती हैं।

इस प्रकार केरल-यात्रा पूरी करके शंकर फिर शिष्यों के साथ शृंगेरी लौट आये।

: ६ :

शृंगेरी-मठ से शंकर विजय-यात्रा पर निकले। भला उनके सामने कौन ठहर सकता था! वह हर जगह विजय-पताका फहराते घूमते रहे, वेदांत का प्रचार करते रहे। वह उज्जैन, काशी, कांची, रामेश्वर, मायापुरी, द्वारिका, प्रयाग, पुरी, बदरीनाथ, श्रीपर्वत आदि-आदि सभी प्रसिद्ध स्थानों पर गये। ये स्थान उनके

विरोधियों के गढ़ थे। यहांपर उन्होंने विरोधियों को हराकर उनको अपना अनुयायी बनाया।

शंकर ने भारत के चारों कोनों पर अपने चार मठ स्थापित किये। उत्तर में बदरीनाथ तीर्थ के पास ज्योतिर्मठ, उनके शिष्य तोटकाचार्य यहां के मठाधीश बने। दक्षिण में मैसूर में तुंगभद्रा के तट पर शारदा-देवी का मन्दिर बनवाया। इसके साथ जो मठ स्थापित हुआ, उसे 'शृंगेरी-मठ' कहते हैं। इसके आचार्य सुरेश्वर बने। पूरब में जगन्नाथ पुरी (उड़ीसा) में गोवर्धन मठ स्थापित किया, जिसके मठाधिपति पद्मपाद बनाये गए। पश्चिम में गुजरात है। वहां कृष्ण की नगरी द्वारिका में चौथा मठ शारदा-पीठ बना। हस्तामलक इस मठ के आचार्य के पद पर बैठे। शंकर की यह कैसी अनोखी सूझ थी! सारा भारत, उत्तर, दक्खिन, पूरब, पश्चिम एक है, सब जगह एक ही संस्कृति का बोल-बाला है, एक आत्मा सब जगह रम रही है। बहुत कम मनीषी यह कल्पना कर पाये हैं। इन चार मठों के अलावा शंकर ने और भी अनेक मठ स्थापित किये थे।

कहते हैं, शंकर काश्मीर भी गये थे। आज भी श्रीनगर में 'शंकराचार्य की पहाड़ी' है। उनके नेपाल जाने की चर्चा भी आती है। अन्तिम वाद-विवाद उनका

गोहाटी में हुआ। वहां अभिनवगुप्त नाम के शक्ति के उपासक थे। यहींपर आचार्य को भगंदर रोग हो गया। कुछ आराम होने पर वह हिमालय में बदरीनाथ चले गये। यह स्थान उन्हें बहुत प्यारा था।

जिस प्रकार उनके जीवन की बहुत-सी घटनाओं के बारे में ठीक-ठीक कुछ नहीं कहा जा सकता, उसी तरह उन्होंने शरीर कहां छोड़ा, उसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता। एक मत के अनुसार उन्होंने दक्खिन भारत के कांची तीर्थ में अपना शरीर छोड़ा। दूसरे मत के लोग मानते हैं कि आचार्य के प्राणों का अंत केरल के 'त्रिचूर' नामक स्थान पर हुआ। तीसरा मत यह है कि उन्होंने कैलास में जाकर शरीर छोड़ा। अधिकतर लोग इसी मत को मानते हैं, विशेषकर संन्यासी।

ऐसा जान पड़ता है कि किन्हीं और शंकर के जीवन की घटनाएं इनके जीवन की घटनाओं से मिल गई हैं। इनके चारों मठों के अधिपति भी शंकर ही कहलाते हैं। पहचान के लिए इनको 'आदि शंकर' कह देते हैं। ऐसी हालत में गलती हो जाना मामूली बात है। और भी तरह-तरह की बातें सुनी जाती हैं। कुछ लोग कहते हैं कि शंकर एक बार वाद-विवाद में हार गये थे। जैसा

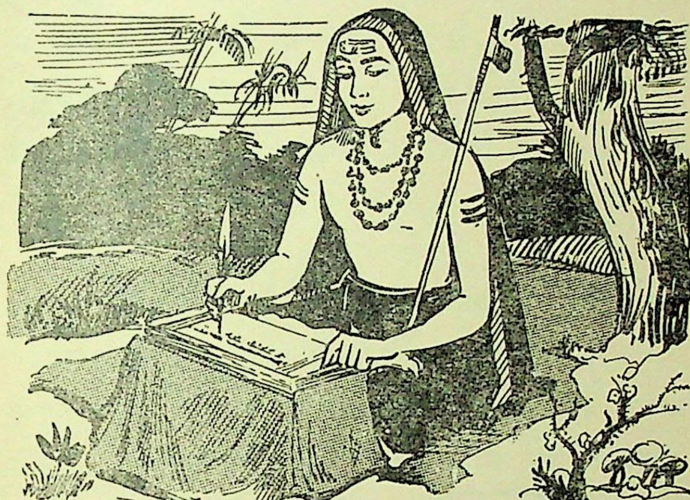
कि हारनेवाला करता था, वह भी खौलते हुए तेल के कड़ाह में बैठकर जल मरे। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि किसी लामा ने मंत्र-तंत्र से शंकर को मार डाला था।

ये सब ऊल-जलूल बातें हैं। उन जैसे ज्ञानी यति-राज और महापुरुष के लिए क्या मरना, क्या जीना। बत्तीस वर्ष की भरी उमर में उन्होंने कैलास में समाधि ली और इस संसार से चले गये। वह तो अद्वैत के उपासक थे। अपनेको ब्रह्म से अलग मानते ही न थे। इसलिए मौत उनके लिए केवल रूप का पलटना थी।

बत्तीस साल की छोटी-सी उमर में शंकर ने कितने ग्रन्थ लिखे, यह भी ठीक-ठीक पता नहीं। पता यही है कि जो कुछ लिखा, निचोड़ लिखा, बेजोड़ लिखा। ऐसा लिखा कि किसीको कुछ कहने को नहीं रहा, समझने को नहीं रहा। इनकी टीकाएं इतनी पूर्ण, संजी हुई और सरल हैं कि लोग पुराने पंडितों को भूल-से गये। टीकाओं के अलावा इन्होंने शिव, विष्णु, गणेश आदि सभी देवों की स्तुति में ६४ स्तोत्र लिखे।

शंकर का 'अद्वैत वेदांत' केवल पंडितों के लिए नहीं है। वह बड़ा सरल और सीधा है। संसार के सभी प्राणी उसे अपनाकर सुखी हो सकते हैं। सबको आपस में प्रेम करना चाहिए। जब सबमें एक ही ज्योति है

तो किसका आदर, किसका अनादर। हम और हमारे पड़ोसी एक ही हैं। तब पड़ोसी की सहायता अपनी ही



जगद्गुरु शंकराचार्य

सहायता है। स्वार्थ और परमार्थ में कोई अन्तर नहीं।

शंकर ब`े विद्वान थे तो बड़े प्रेमी भी थे। मां के प्यार की कहानी कैसी अनोखी है। शिष्यों को भी वह ऐसा ही प्यार करते थे। वह कोरे पंडित भी नहीं थे। खूब घूमते थे, खूब काम करते थे। वह कवि भी अनोखे थे। "भज गोविंदं, भज गोविंदं, भज गोविंदं मूढ़मते"—यह स्तोत्र पढ़ते-पढ़ते पत्थर दिल भी नाच

उठते हैं।

उनके गुणों की हम कहांतक चर्चा करें, उनके जीवन के कौन-से रूप को देखें, वह तो हर ओर से प्रकाश देता है। आजतक दे रहा है। सारे भारत में जिसने एक आत्मा की, एक ज्योति की, कल्पना की, सभी जीवों को जिसने ब्रह्म माना, उस अनोखे आचार्य को हम बार-बार प्रणाम करते हैं। जिसने केवल दिलों को नहीं हिलाया, दिमाग पर भी चोट की, बुद्धि के सहारे विवेचन किया और जनसाधारण के दिलों को जीत लिया, उस अनोखे जादूगर को हम बार-बार प्रणाम करते हैं। उनके तर्क ठीक थे, या गलत, इस बात पर बहस हो सकती है, पर उन तर्कों से उन्होंने समूचे भारत का मन हर लिया था, यह सत्य कोई नहीं झुठला सकता। इसीलिए हम उनको बार-बार प्रणाम करते हैं।

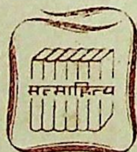


समाज-विकास मा ला की पुस्तकें

१. बदरीनाथ
२. जंगल की सैर
३. भीष्म पितामह
४. शिवि और दधीचि
५. विनोबा और भूदान
६. कबीर के बोल
७. गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन
८. गंगाजी
९. गौतम बुद्ध
१०. गांव सुखी, हम सुखी
११. निषाद और शबरी
१२. कितनी जमीन ?
१३. ऐसे थे सरदार
१४. चैतन्य महाप्रभु
१५. कहावतों की कहानियां
१६. सरल व्यायाम
१७. द्वारका
१८. बापू की बातें
१९. बाहुबली और नेमिनाथ
२०. तंदुरुस्ती हजार नियामत
२१. बीमारी कैसे दूर करें ?
२२. माटी की मूरत जागी
२३. गिरिधर की कुंडलियां
२४. रहीम के दोहे
२५. गीता-प्रवेशिका
२६. तुलसी-मानस-मोती
२७. दादू की वाणी
२८. नजीर की नज्में
२९. संत तुकाराम
३०. हजरत उमर
३१. बाजीप्रभु देशपांडे
३२. तिरुवल्लुवर
३३. कस्तूरबा गांधी
३४. शहद की खेती
३५. कावेरी
३६. तीर्थराज प्रयाग
३७. तेल की कहानी
३८. ... रहें ?
३९. ग ... ना ?
४०. कैल... सरोवर
४१. अच्छा कि ... या बुरा ?
४२. नरसी मेहता
४३. पंढरपुर
४४. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
४५. संत ज्ञानेश्वर
४६. धरती की कहानी
४७. राजा भोज
४८. ईश्वर का मंदिर
४९. गांधीजी का संसार-प्रवेश
५०. ये थे नेताजी
५१. रामेश्वरम्
५२. कब्रों का विलाप
५३. रामकृष्ण परमहंस
५४. समर्थ रामदास
५५. मीरा के पद
५६. मिल-जुलकर काम करो
५७. कालापानी
५८. पावभर आटा
५९. सवेरे की रोशनी
६०. भगवान के प्यारे
६१. हारूं-अल-रशीद
६२. तीर्थंकर महावीर
६३. हमारे पड़ोसी
६४. आकाश की बातें
६५. सच्चा तीरथ
६६. हाजिर-जवाबी
६७. सिंहासन-बत्तीसी : भाग १
६८. सिंहासन-बत्तीसी : भाग २
६९. नेहरूजी का विद्यार्थी-जीवन
७०. सूरदास
७१. नाना फड़नवीस
७२. गुरु नानक
७३. हमारा संविधान
७४. राजेंद्रबाबू का बचपन
७५. परमहंस की कहानियां
७६. सोने का कंगन
७७. झांसी की रानी
७८. हुआ सवेरा
७९. बीरबल की बातें
८०. मन के जीते जीत
८१. मुरब्बी
८२. हरिद्वार
८३. सागर की सैर
८४. आनबान के रखवारे
८५. महामना मालवी
८६. भर्तृहरि
८७. देवताओं का प्यारा
८८. देश यों आगे बढ़ेगा
८९. हमारे मुस्लिम संत
९०. नन्हा अबाबील
९१. स्वामी विवेकानंद
९२. आप भला, जग भला
९३. नासिक
९४. सूर के पद
९५. संत वेमन्ना
९६. आराम हराम है
९७. गोरा-बादल
९८. पाटलिपुत्र
९९. महर्षि अगस्त्य
१००. दानवीर कर्ण
१०१. शेख सादी
१०२. गोदावरी
१०३. कुम्हार की बेटी
१०४. नर्मदा
१०५. शंकराचार्य
१०६. अमरनाथ
१०७. महारानी अहिल्याबाई
१०८. पढ़ेंगे-लिखेंगे
१०९. कोणार्क
११०. मंगू भैया

मूल्य : प्रत्येक [illegible] ४० न.पै.

१०५



सस्ता साहित्य मण्डल

४० ... सै. (स नये पैसे